Volume V, Perspectives - A Peer-Reviewed, Bilingual, Interdisciplinary E-Journal
https://perspectives-jdmc.in/
eISSN – 2583 4762

शेडी सयानी लेडीज़ का पता पूछती फ़िल्म लापता लेडीज़

सुधा उपाध्याय

प्रोफ़ेसर

हिंदी विभाग, जानकी देवी मेमोरियल कॉलेज

प्रोफ़ेसर सुधा उपाध्याय आज की हिन्दी की लेखिकाओं में महत्वपूर्ण स्थान बना चुकी हैं। अविधा सुधा उपाध्याय की सबसे बड़ी ताक़त है। अलग तेवर की वजह से सुधा उपाध्याय साहित्य और आलोचना जगत में बिलकुल अलग दिखती हैं। कविता और कहानी में जिस तरह वो समाज, इतिहास और राजनीति के सूक्ष्म बिंदुओं को पकड़ती हैं आलोचनाओं में कृति के समाजशास्त्र, सौंदर्य बोध और उसके तलीय स्वर को पकड़ने का साहस करती हैं। एक शिक्षक होने के नाते समाज के हर उस शख्स के लिए वो आवाज़ उठाती हैं जो शिक्षा से वंचित रह जा रहा है। कविता, कहानी, लेख और आलोचना में इसकी झलक साफ नज़र भी आती है। किसी अनर्गल विमर्श में न पड़कर एक स्वस्थ संवाद कायम करने में विश्वास रखती हैं। इनकी दो कविता संग्रह ‘इसलिए कहूँगी मैं’और ‘बोलती चुप्पी’ और दो आलोचना की पुस्तकें वर्चस्व की राजनीति और पाठ पुनर्पाठ प्रकाशित हो चुकी है। सुधा पेशे से अध्यापक हैं और दिल्ली विश्वविद्यालय के जानकी देवी मेमोरियल कॉलेज में हिंदी विभाग में प्रोफेसर हैं। ईमेल – sudha@jdm.du.ac.in

शेडी सयानी लेडीज़ का पता पूछती फ़िल्म लापता लेडीज़

अरेबहुत ज़्यादा शेडी है बहुत सयानी लेडी है।

अरेबहुत ज़्यादा शेडी है बहुत सयानी लेडी है.....

तमाम स्त्री विर्मर्शों और बहसों पर फिल्म लापता लेडीज़ भारी है. महिलाओं की मुश्किलें सिर्फ़ वहाँ तक सीमित नहीं जिसको लेकर देश के महानगरों में महिलाओं के अधिकारों पर बात की जाती है. बल्कि ज़्यादातर महिलाओं की मुश्किलें अब भी काफ़ी हद तक वैसी ही हैं जैसी पहले थीं. तमाम स्त्री विमर्श की हल्की सी रौशनी तक इन महिलाओं के पास नहीं पहुँच पाती हैं.लापता लेडीज़, यह फ़िल्म देश की उन तमाम औरतों की एक भीड़ को ढूँढने की कोशिश है, जिन्हें सप्रयास हाशिए से, मुख्य धारा से और आम जीवन से काट दिया जाता है. उनकी साँसें चल तो रही हैं पर हर धड़कन, हर गतिविधियाँ यहाँ तक की उनकी नज़रों पर भी पहरा लगा दिया जाता है. सिर्फ़ नीचे देखना है और चुपचाप ज़िंदगी को बोझ को खींचना है. न मन मर्ज़ी चलेगी, न अपनी कोई इच्छा चलेगी, चलेगी तो बस मर्दवादी मानसिकता में घिसटती हुई औरतें और उनकी कनखियों में सिसकती आँखें और बंद ज़ुबान पर समाज की हुकूमत. जियो स्टूडियोज और आमिर खान प्रोडक्शंस में बनी फ़िल्म लापता लेडीज़ का निर्देशन किरण राव ने किया है. कहानी बिप्लब गोस्वामी की है जिसका स्क्रीन प्ले और डायलॉग स्नेहा देसाई ने किया है. फ़िल्म की शुरुआत ही एक समझदार दर्शक को झकझोर कर रख देने वाली है. दुल्हन मायके से विदा होकर ससुराल जा रही है. लंबी सी घूँघट काढ़कर. मेड़ पर चलने में लड़खड़ाती है तो उसको कहा जाता है—"एक बार घूँघट ले लिया तो फिर आगे नहीं नीचे देखकर चलना सीखो." यह बात कहने वाली एक औरत है, जिसको उसकी माँ ने विदा होते वक़्त कहा होगा...और यहाँ से शुरु होती है परंपरा के नाम पर संस्कार की दुहाई देकर महिलाओं को क़ैद में रखने की साज़िश. क्या बेटियों की आज़ादी तब तक रहती है जब तक वो पिता के घर में रहती है? ऐसा क्यों है कि पिता के घर तक ही बेटियाँ मनमानी कर सकती हैं. वो आगे देखकर सिर्फ़ पिता के घर में ही क्यों चलें? पति के घर में नीचे देखकर चलने की आदत क्यों लगाई जाती है? क्या शादी के बाद आगे देखकर चलने की आज़ादी सिर्फ़ पति को ही है, पुरुष को ही है? पत्नी को क्यों नहीं, महिलाओं को क्यों नहीं? इस देश की यह परंपरा महिलाओं की ग़ुलामी की सबसे बड़ी गवाह है. लाल घूँघट काढ़े ट्रेन के डिब्बे के एक ही कंपार्टमेंट में एक साथ तीन-तीन दुल्हन हैं. घूँघट काढ़े सारी दुल्हन एक सी दिख रही है. समाज की त्रासदी और विडंबना का इससे दर्दनाक दृश्य क्या हो सकता है कि घूँघट के अंदर दुल्हन अलग-अलग हों तो हों, पर बाहर से सब एक जैसी दिख रही हैं. सबको नीचे देखने का तथाकथित संस्कार दिया गया है. इसी घूँघट की वजह से दो दुल्हन की अदला-बदली हो जाती है. फ़िल्म में इस दृश्य को बड़ी सहजता से दिखाया गया है. पति को भी अंदाज़ा नहीं है कि उसकी पत्नी कौन है. ऐसे समाज पर लानत है कि शादी किसी और से घर लेकर किसी और को गए. वजह घूँघट. गाँव पहुँचने वाले पहले पति दीपक से जब उसके पिता पूछते हैं कि साथ में कौन चल रहा है कैसे पता नहीं चला? तो दीपक बड़ी सच्चाई से कहता है—क़द काठी एक जैसा,

लाल साड़ी एक जैसा और फिर घूँघट था तो कैस पहचानते...इस बात पर बदली हुई दुल्हन जया कहती है—‘‘ठीक तो कह रहे हैं...इस तंबू जैसे घूँघट के पार न तो लेडीज़ की शक्ल दिखती है न तो लेडीज़ को जूते के अलावा कुछ दिखता है’’ यानी तय है कि महिलाओं को तंबू जैसी घूँघट पसंद नहीं है फिर भी परंपरा के नाम पर ढोए चली जा रही हैं और अपने अस्तित्व को क़ैद में रखने को तैयार होती चली जा रही है. जया आगे कहती है—"पति भी नया, जूता भी नया, कैसे पहचानती?’’स्नेहा देसाई ने कमाल का डायलॉग लिखा है. हर शब्द भेदक है. समाज में चली आ रही कुरीतियों को उजागर करने के लिए. इसी के आगे एक और डायलॉग है, जो सोचने पर मजबूर करता है....जया से उसके पति का नाम पूछा जाता है...इस पर घर की औरतें कहती हैं...कोई औरत अपने मुँह से पति का नाम लेती है क्या? लेकिन तब तक जया अपने पति का नाम बता देती है. इसके बाद आस पास खड़ी औरतों की जो प्रतिक्रिया है वो समाज पर करारा तमाचा जड़ता है...सारी औरतें हैरान हैं कि जया ने अपने पति का नाम कैसे ले लिया? पति का नाम पत्नी क्यों नहीं ले सकती हैं? क्या इक्कीसवीं सदी में औरतों को इतनी भी आज़ादी नहीं मिलेगी? मैं ये नहीं कहती कि देश की सारी औरतें घूँघट काढ़कर घर में रहती हैं. पर अब भी ऐसी औरतों की तादाद इस देश में बहुत ज़्यादा है. देश के कई हिस्सों में परंपरा है कि महिलाएँ ससुराल में रिश्ते में अपने से बड़ों लोगों के सामने जब भी जाती हैं घूँघट काढ़ लेती हैं. और ये सिलसिला मरते दम तक चलता है. वही औरतें जब कभी अपने मायने जाती हैं तब वो घूँघट नहीं काढ़ती हैं. ऐसा क्यों? संभव है पति इस बात से इनकार करता हो पर समाज में भला बुरा कहने वाले चार लोगों की चिंता ज़्यादा है. इस फ़िल्म दो महिलाओं को दिखाया गया है. एक जया तो पढ़ना चाहती है और वो समाज की तमाम जकड़न को तोड़ना चाहती है पर घूँघट नहीं हटा पाई और एक दूसरी महिला है फूल, जो पूरी तरह से परंपराओं के जाल में फँसी है. इस फ़िल्म में लड़कियों की परवरिश पर भी सवाल उठाए गए हैं. जिस स्टेशन पर दूसरी दुल्हन फूल है वहाँ वो स्टेशन मास्टर के पास जाती है. स्टेशन मास्टर उसके पति का नाम पूछता है तो वो नाम नहीं बताती है. बाद में हथेली पर मेहंदी से लिखे पति के नाम को दिखाती है. जब छोटू, फूल को मंजू माई के पास लेकर जाता है. मंजू माई और फूल के बीच की बातचीत बहुत महत्वपूर्ण है इस समाज की असलियत को दिखाने के लिए. मंजू माई पूछती है—फिरौड का मतलब जानती हो? इस देश में लड़की लोगों के साथ हज़ारों साल से एक फिरौड चल रहा है...भले घर की बहू-बेटी! इस बात पर फूल बड़े आत्मविश्वास से कहती है—हमारे साथ कोई फ्रौड नहीं हुआ है, हमको बहुत अच्छी शिक्षा दी गई है. बहुत अच्छा बनाया गया है. दोनों के बीच की ये बातचीत समाज की पोल खोलकर रख देती है. एक महिला को अपने न घर का पता मालूम है न ससुराल का पता मालूम है. जबकि उसकी शादी हो चुकी है. शादी होने का मतलब है लड़की मानसिक तौर पर इतनी परिपक्व हो चुकी होगी कि वो कहाँ रहती है और कहाँ जाना है. फूल के लिए एक अच्छी लड़की का मतलब है, घर का सारा काम आना, कपड़े सिलना और भजन कीर्तन. बाहरी दुनिया से काटकर सिर्फ़ घर के काम को अच्छा कहने की आदत किसी और ने नहीं बल्कि माँ और बाप ने दिया है. ज़ाहिर है माँ-बाप के लिए भी बेटियों को संस्कार देने का मतलब है घर का सारा काम आना. यही फिरौड चल रहा है हज़ारों सालों से मंजू माई

की नज़रों में.फूल भी तड़पती है सजन के लिये सजन भी तड़पता है फूल के लिये और एक अत्यंत लोकप्रिय ट्रोलिंग में सबसे ऊपर हर सोशल मीडिया का जान प्रान हर प्रेम करने वाले का जयदेव बनकर उभरा गाना खूब पसंद किया गया चर्चित रहा।

कैसे घनेरे बदरा घिरें

तेरी कमी की बारिश लिए?

सैलाब जो मेरे सीने में है

कोई बताए, ये कैसे थमे

तेरे बिना अब कैसे जिएँ?

ओ, सजनी रे

कैसे कटें दिन-रात?

कैसे हो तुझ से बात?

तेरी याद सतावे रे……..

लापता लेडीज़ में एक तीसरी महिला है मंजू माई. इन दोनों महिलाओं से अलग. बिंदास और निडर. पुरुष सत्तात्मक समाज में पुरुषों को गलियाती हुई अकेले दम पर अपनी ज़िंदगी चलाती हुई. जब फूल मंजू माई को अपना खोंइंछा देती है तो मंजू माई कहती है—हल्दी, दूब और मुट्ठी भर चावल से के दाने से रक्षा करेगी? उ आदमी का जो ख़ुद तुम्हारी रक्षा न कर पाया? फूल जब पूछती है कि आप अकेले रहती हैं? तो जवाब दिया—भगा दिया सबको. मर्द, बेटा सबको. एक तो बैठकर हमारी कमाई खाए, ऊपर से दारू पीकर हमको ही मारे. ऊपर से कहते, जो प्यार करे है ओका मारने का हक़ होता है…एक दिन हम भी घुमा के हक़ जता दिए. तो आप ध्यान से देखें तो इस फ़िल्म तीनों अहम महिलाएँ तीन अलग-अलग महिलाओं का प्रतिनिधित्व कर रही हैं. एक है फूल, जो निहायत ही घरेलू है, जिसकी ज़िंदगी में घर के अलावा कुछ नहीं है. एक दूसरी महिला है जया, जो पढ़ना चाहती है पर अब भी समाज का तानाबाना नहीं तोड़ा पा रही है और एक तीसरी महिला है मंजू माई, जो इन दोनों की स्थितियों से गुजरकर अब अपने पैरों पर खड़ी है और उसको मालूम है समाज में महिलाओं की स्थिति क्या है. मंजू माई समाज के बनाए ताने बाने को तोड़ती है और ख़ुद के लिए जगह बनाती है. फ़िल्म को रोचक बनाने के लिए कहानी को आगे बढ़ाया जाता है और यह भा साबित करने की कोशिश होती है कि एक निहायत ही भ्रष्ट पुलिस अधिकारी को भी इस बात का अंदाज़ा है कि लड़कियों के लिए पढ़ना और आगे बढ़ना बहुत ज़रूरी है. इसलिए पुलिस अधिकारी मनोहर कहता है आख़िरी में जया को-पढ़ाई अच्छे से करना. आख़िर में फूल को उसका पति मिल जाता है. जया अपने पति के साथ नहीं जाती है, आगे की पढ़ाई के लिए शादी को नकार देती है. कुल मिलाकर यह फ़िल्म अपने मक़सद में कामयाब तो

है ही साथ में यह मैसेज देने में भी सफल है कि अब भी समाज में तीन तरह की महिलाएँ है. पर क्या बिना बुरे अनुभव से गुजरे मंजू माई जैसी महिलाएँ नहीं हो सकती हैं, जो बिंदास हों, आत्मनिर्भर हों और पुरुषों से आँखों से आँखें मिलाकर आत्मविश्वास से लबरेज़ होकर बात करती हों. जया का पढ़ाई के लिए शादी को नकारना एक सुखद दृश्य क़ायम करता है पर इसकी नौबत आने की ज़रूरत ही क्यों पड़े. लड़की के माता-पिता अपनी बेटियों को बोझ की तरह क्यों लेते हैं, इस सोच को बदलने की ज़रूरत है.फ़िल्म के किरदार भले काल्पनिक हों कहानी सच से अधिक सच्ची है।